



International Journal of Humanities and Arts

ISSN Print: 2664-7699
ISSN Online: 2664-7702
Impact Factor: RJIF 8.00
IJHA 2024; 6(2): 85-88
www.humanitiesjournals.net
Received: 02-08-2024
Accepted: 27-08-2024

डॉ. कृपा किंजलकम
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
आईएसडीसी, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

रीमा यादव
शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
आईएसडीसी, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. कृपा किंजलकम
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
आईएसडीसी, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

‘जंगल जहां शुरू होता है’ में अभिव्यक्त पर्यावरणीय संवेदना का नवीन आयाम: मानसिक प्रदूषण

डॉ. कृपा किंजलकम, रीमा यादव

DOI: <https://doi.org/10.33545/26647699.2024.v6.i2b.93>

प्रस्तावना

“मशीनें

पेड़ों को उखाड़ चुकने के बाद हांफती हैं।

अब हांफती मशीनें दूढ़ती हैं

कहीं कोई पेड़ की छांह।”¹

आदिवासी युवा कवयित्री जसिता केरकेट्टा की उपर्युक्त काव्य पंक्तियां हमें स्पष्ट तौर पर बताती हैं धरती पर जीवन बनाये रखने के लिए पेड़ और पर्यावरण का कितना महत्व है। वृक्षों से जीवधारियों का सांसों का रिश्ता है। विकास की दौड़ में सहायक मानव निर्मित वस्तुएं (जिन्हें निर्जीव समझा जाता है) भी जल, जंगल, जमीन को नष्ट कर कैसे खुद पेड़ की छाया के लिए कितनी विकल हैं! इस कड़वे सच और संवेदना को जसिता की उपर्युक्त काव्य पंक्तियां हमें आभास कराने के लिए पर्याप्त हैं। अगर देखा जाए तो पर्यावरण और मनुष्य का रिश्ता कोई नया नहीं है, अपितु आदिम युग से ही अटूट रहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है। “मनुष्य भी अन्य प्राणियों की भांति पर्यावरण का एक अंग है। पंचतत्व से निर्मित प्रकृति की गोंद में हम पलते-बढ़ते हैं, सांस लेते हैं और अंत में इन्हीं पंचतत्वों में विलीन हो जाते हैं। पर्यावरण के प्रति अपने आदरभाव को व्यक्त करने के लिए मनुष्य ने पर्यावरणीय उपादानों, जैसे हवा, पानी, पेड़-पौधे, अग्नि, सूर्य, चंद्र आदि को ईश्वर मानकर उनकी पूजा-अर्चना की।”²

इस प्रक्रिया से प्रकृति में संतुलन बना रहा। मूल चिंता मनुष्य के स्वभाव में आए विचलन से है। और यही विचलन ही मानसिक प्रदूषण का कारक है। विज्ञान तकनीकी के बढ़ते प्रयोग के साथ-साथ मानव की बढ़ती भौतिक इच्छाएं और आकांक्षाएं प्रत्यक्ष-परोक्ष जिम्मेदार हैं। यह स्वीकारना ही होगा कि “प्राकृतिक संसाधनों का असीमित मात्रा में दोहन, औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि, जंगलों पहाड़ों का विनाश, खनिज सम्पदा की बेशुमार लूट आदि में मनुष्य के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण पर्यावरण संतुलन बिगड़ गया है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की अंधी दौड़ में पर्यावरण को हानि पहुंच रही है। मौसम चक्र बिगड़ता जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग, बर्फ का अत्यधिक मात्रा में पिघलना, समुद्र का बढ़ता जलस्तर, ओजोन परत की हो रही क्षति आदि पर्यावरणीय असंतुलन के ही उदाहरण हैं।”³ ऐसी परिस्थिति में हमें समझना होगा पर्यावरण से संबंधित समस्या किसी एक व्यक्ति, गांव, देश की समस्या नहीं है, बल्कि आज सम्पूर्ण विश्व इस समस्या से लड़ रहा है।

पर्यावरण चेतना और संरक्षण आज के युग की प्रमुख मांग है। मनुष्य का विकास पर्यावरण के विनाश पर केंद्रित नहीं होना चाहिए। इस संबंध में पर्यावरण चिंतक चिपको आंदोलन के प्रमुख नेता रहे सुंदर लाल बहुगुणा जी का कथन विचारणीय है “विकास का लक्ष्य लोगों को स्थाई सुख, शांति और संतोष प्रदान करने वाला होना चाहिए न कि अस्थायी समृद्धि प्रदान करने वाला। विकास के वास्तविक स्वरूप का निर्णय सभी जीवधारियों के हित तथा सातत्य की दृष्टि से होना परम आवश्यक है।”⁴

“नब्बे के दशक में उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण और औद्योगिकीकरण का युग आया तत्पश्चात उत्तर औद्योगिकीकरण की स्थिति सामने आयी, जिससे वस्तुएं एवं सेवाओं के उत्पादन में बढ़ोतरी देखने को मिली। बाजारवाद के समय में मनुष्य इससे अछूता नहीं रह गया साथ ही साथ पर्यावरण भी प्रदूषित हुआ। इस प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर भली भांति देखा जा सकता है। मनुष्य दिन पर दिन मानसिक अपंगता का शिकार होता जा रहा है जिसे आधुनिक शोधों में भी प्रमाणित किया गया है। आधुनिक समय में औद्योगिकीकरण के साथ साथ प्रौद्योगिकी भी विकसित की जा रही है

इसका दुष्प्रभाव मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ रहा है प्रमुख पर्यावरण प्रदूषकों में, वायु प्रदूषक, भारी धातुएं, आयनकारी विकिरण, आर्गनोफास्फेट कीटनाशक, प्रकाश प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, पर्यावरणीय आपदाएं और चिंता, मनोदशा और मनोविकृति सिंड्रोम सहित विभिन्न मानसिक स्वास्थ्य विकार उत्पन्न हो रहे हैं।⁵

साहित्य और पर्यावरण का रिश्ता पुराना है। पर पूर्व के साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण, साहित्यिक उपादान के रूप में सहायक रहें। अब साहित्य में प्रकृति एवं पर्यावरण उपादान से अधिक प्रश्न और विमर्श के रूप में है। कारण स्पष्ट। जल-जंगल-जमीन की लड़ाई मुख्यतया पर्यावरण बचाने की ही लड़ाई है। इस संघर्ष का स्वर साहित्य में देखा जा सकता है। विशेषतः आदिवासी साहित्य में इसके खतरे के स्वर को साफ-साफ सुना जा सकता है। पर इससे इतर साहित्य में भी पर्यावरणीय चिंताएं हैं। विभिन्न विषयों जैसे कि जल, जंगल, जमीन, किसान, खदान, मजदूर आदि पर शोधपरक लेखन करने वाले उपन्यासकार संजीव के साहित्य में प्रकृति और पर्यावरणीय चिंताएं गहरे स्तर पर मौजूद हैं। इनके कई उपन्यास आदिवासी पृष्ठभूमि, कोयला खनन मजदूरों, किसानों की विवशता एवं पर्यावरण के क्षरण पर केंद्रित हैं। पर जहां तक मूल सवाल कथाकार संजीव के उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता है' की है यद्यपि यह पूरी तरह पर्यावरण पर केंद्रित नहीं है पर "वन प्रांतर में प्रकृति के साथ-साथ फैले अपराध की जड़ों और शाखाओं पर रोशनी डालती एक शोध आधारित कथा रचना है।"⁶ इसमें वाह्य जंगल से अधिक मनुष्य के भीतर फैले पशुता के जंगल की कहानी है। जिसे मानसिक प्रदूषण कहा जा सकता है। साथ ही इस उपन्यास में सत्ता और प्रशासन तंत्र की जटिलताएं और विफलताएं हैं दृष्टांत की समस्याएं हैं; जिसका संबंध बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले से है जिससे कभी 'मिनी चंबल' के नाम से जाना जाता था। कथाकार संजीव के शब्दों में कहें तो 'पश्चिमी चंपारण से ही रत्नाकर से परेया तक सभी डाकू क्यों पैदा होते हैं?' इस क्यों में ही सत्ता और प्रशासन तंत्र की नाकामियां छिपी हैं जो पाठक के समक्ष सवाल पैदा करती हैं। उस भ्रष्ट तंत्र की ओर इशारा करती हैं; जिसमें रत्नाकर से लेकर परशुराम, काली, बंशी, गोकुल, जोगी, नोनिया, निन्दा और परेया जैसे डाकुओं को जन्म देती है। पूरा उपन्यास मानसिक प्रदूषण, सत्ता और प्रशासन तंत्र की पोल पट्टी खोलकर रख देता है। कहा जा सकता है "यह जनतांत्रिक व्यवस्था के नाम पर 'जंगलराज' है। यहां जन शक्तिहीन और तंत्र शक्तिशाली। यह जंगल राज दिल्ली से लेकर परना तक और क्रमशः पूरे भारतवर्ष में फैला हुआ है। अतः पश्चिमी चंपारण से नहीं, बल्कि दिल्ली से ही शुरू हो जाता है और इस जंगल को विस्तार रूप दे रहे हैं—इस देश के भ्रष्ट मंत्री, भ्रष्ट राजनेता और भ्रष्ट प्रशासनिक एवं पुलिस अधिकारी। जो रक्षक है वही कहता है कि इस भ्रष्ट शासन में डाकू पर भरोसा किया जा सकता है, परंतु पुलिस अधिकारियों पर नहीं।"⁷ अतः डाकू की समस्या के आलोक में विकृत तंत्र के कोने कोने को समझा जा सकता है और मनुष्य की दूषित मानसिकता या यो कहें मानसिक प्रदूषण को भी।

इस उपन्यास की परिधि काफी व्यापक है। प्रथम दृष्टया डाकू की समस्या केंद्रीय समस्या के तौर पर दिखाई पड़ती है। पर पृष्ठ दर पृष्ठ गुजरने पर प्याज़ के छिलके की तरह इसकी परते खुलती हैं। सच्चाई और खुलकर सामने आती है। अपराध को पोषण देने वाले तंत्र का पर्दाफाश होता है। शोषण, बलात्कार, अपहरण, डकैती, फिरौती, औरतों की खरीद-बिक्री, हत्या आदि अमानवीय घटनाओं का पता चलता है और यह सब सत्ता और प्रशासन के शह पर हो रहा होता है। और इस मानसिक प्रदूषण को संजीव ने बड़ी बेबाकी से उजागर किया है। 'आपरेशन ब्लैक पाइथन' जो डाकुओं के उन्मूलन हेतु प्रशासन द्वारा चार जोनों (जोन ए, बी, सी और डी) में विभक्त कर चलाया जाता है। जोन 'डी' के ऑपरेशन इंचार्ज पुलिस उप-अधीक्षक मिस्टर कुमार हैं

जिसे उपन्यास का नायक भी कह सकते हैं। सभी जोन के ऑपरेशन इंचार्ज को इनके बड़े अधिकारी द्वारा विशेषतया तीन कामों के लिए नियुक्त किया गया है प्रथम—डाकुओं की गिरफ्तारी या सफाया, द्वितीय—अवैध हथियारों को सीज करना और तीसरा—जनता के खोए हुए विश्वास को फिर से बहाल करना। क्या करना है के साथ-साथ क्या नहीं करना है का भी निर्देश उच्च अधिकारी द्वारा निर्देशित है जैसे—किसी निर्दोष नागरिक को परेशान न करना, "अभियान का हर सदस्य एक जिम्मेदार पुलिसकर्मी की तरह पेश आयेगा। वह किसी जंगली जानवर का शिकार नहीं करेगा, न किसी महिला आदि को, न ही किसी दूसरे आदमी को उत्पीड़ित करेगा।"⁸ यानी, प्राकृतिक और सामाजिक, मानसिक आदि पर्यावरणों की सुरक्षा! पर असल में इसके विपरित सारे जिम्मेदार चरित्र अपना-अपना किरदार निभाते हैं। सारे आदर्श निर्देशों को तंत्र से जुड़े जिम्मेदार लोग ही तार-तार करते हैं। महिलाओं की सुरक्षा के बजाय पुलिस अधिकारियों द्वारा महिलाओं से अभद्र व्यवहार और उनका यौन शोषण किया जाता है। पात्र मलारी इसका उदाहरण है, जिसका शारीरिक शोषण पुलिस अधिकारी कुमार द्वारा होता है। जो पुलिस अधिकारी डाकुओं के उन्मूलन, नागरिक के विश्वास की बहाली के लिए आए थे वही कैसे ग्रामीणों से अमानवीय व्यवहार करते हैं। अमानवीयता का एक और चेहरा जब बिसराम बहू को मजबूरीवश डाकुओं का खाना बनाने के जुर्म में दरोगा थाने ले जाता है और जो बर्ताव करता है उससे शासन तंत्र के चरित्र पर अविश्वास पैदा होता है। प्रशासन तंत्र और बिसराम बहू के बीच घटित यथार्थ और बिसराम बहू की विवशता को संजीव लिखते हैं "रुक-रुक कर बता रही है आपबीती बिसराम बहू, 'पूछा, तुम डाकू की मदद करता है। हम बोले नहीं। ऊ बोले, तुम खाना बनवा कर बराबर ले जाता है, रात में खटिया पे लेके सोता है। हम बोले, हमके मारने लगे तो के बचाने आयेगा? ऊ गाली दिया। हम चुपचाप सुनते रहें। फिर बोला तुम काहें आ, तुमरा जवान लड़की नहीं है? तब तो हमरा आग लग गया, बोले हैं। ऊ बोले, तो जाओ, भेज दो। केस खलास कर देंगे। हम बोले, आप जाईएगा उसके पास? ऊ बोले, जाएंगे? हम बोले, ऊ भगवान के पास गया, चले जाइए। बस इसी पर लगे मारने हमको। दारु पिए हुए थे। बहोत मारा, बहो—त—! अब हम किसी काम के नहीं रह गए। नए बचेंगे हम। हमरा बच्चा का का होगा, हे राम!"⁹ निसंदेह यह तंत्र का कमजोर वर्ग पर अत्याचार है, मानसिक प्रदूषण है जो इस कथा में कदम कदम पर देखने को मिलता है।

स्त्रियों पर अमानवीयता और मानसिक प्रदूषण की एक और पराकाष्ठा जब एक ब्राह्मण परिवार द्वारा एक निम्न जाति (दुसाध) के महिला का बलात्कार किया जाता है। फेकन और उसकी पत्नी, जो पांडे के घर काम करते थे। पांडे की पत्नी की एक बात न मानने की यह सजा की दोनों दंपति उस निम्न वर्गीय महिला का अपने भाई द्वारा अपने ही सामने यौन शोषण करवाती है। इस अमानवीयता की ऊंचाई तब और अधिक हो जाती है जब एक महिला के शोषण में एक महिला खुद सहयोग कर रही है। बात पंचायत तक पहुंचती है। लेकिन पंचायत भी सच नहीं अपितु जातीय ऊंच-नीच में विश्वास कर अन्यायपूर्ण फैसला सुनाती है, "पांडे या उनके साले ऊंची जात के आदमी फेकन बहू जैसी नीच जाति के साथ यह कर्म कर ही नहीं सकते।"¹⁰ विवश फेकन थाने भी गया परंतु उसे परशुराम यादव यह कहकर लौटा दिया कि 'वह चमारों, दुसाधों, धोबियों कुम्हारों, लोहारों और नोनियाओं का केस नहीं लेता'। यह विडंबना है सामाजिक, प्रशासनिक तंत्र की, मानसिक प्रदूषण की जिसे संजीव यूं ही नहीं लिखते हैं, "सत्ता प्रायः ही भ्रष्ट और दबंग तत्वों की चेरी होती आई है।"

कहना न होगा कि प्रदूषण चाहे प्राकृतिक हो या मानसिक उसका कारक मनुष्य और उसकी अनंत इच्छाएं होती हैं। यही कारण है कि अब न केवल प्रकृति प्रदूषण अपने चरम पर है अपितु मनुष्य

की मानसिक चेतना (मानसिक प्रदूषण) भी बहुत तेजी से प्रदूषित हुई है। ऐसे में जब सोच प्रदूषित होगी तो मनुष्य वह सब कार्य करेगा जो समाज, मनुष्यता, देश व संस्कृति के लिए हानिकारक होगा। निरंतर बढ़ती अमानुषिक घटनाएँ—हिंसा, हत्या, बलात्कार, ऊँच—नीच की भावना, शोषण, छल, लूट, अपहरण, सांप्रदायिकता आदि इसके उदाहरण हैं जो इस उपन्यास में जगह—जगह देखने को मिलते हैं। मानसिक प्रदूषण का एक प्रसंग देखिए जब निम्न जाति की फेंकन बहू पंडिताइन का आंगन बुहारते हुए बरतनों को उठाकर माजने वाली जगह पर रख दिया—“अरे तेरा हिम्मत कैसे हुआ रे बाभन का बरतन छूने को—?”¹¹ कानूनन समता—समानता की लाख बातों के बाद भी यह मनुष्य की मानसिक प्रदूषण का सच है जिसे उपन्यासकार संजीव अपनी लेखनी के माध्यम से प्रकाश में लाते हैं।

उपन्यासकार संजीव का इन परिस्थितियों को दिखाने का उद्देश्य यह है कि कैसे भ्रष्ट सत्ता और भ्रष्ट प्रशासन तंत्र और उच्च वर्गों के अमानवीय व्यवहार के कारण निम्न वर्ग न चाहते हुए भी अपराध के रास्ते पर जाने को विवश है? पात्र काली जो डाकू तो बना पर वह एक गरीब, लाचार, व्यक्ति है जिसका उपयोग बड़े बड़े महाजन, साहूकार और सामंती व्यवस्था में जकड़े सभी करते हैं। पात्र काली की विवशता को देखिए जब वह कहता है, “हक की कमाई मांगने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं हैं—क्या वह इन हरामखोरो की बेगार करने के लिए पैदा हुआ है?—हर तरफ अंधेरा है, हर तरफ घुटना!” काली की यह बेबसी और स्कूल जा रहे अल्ताफ साहब का पंद्रह हजार रूपए के लिए नारायण और काली द्वारा किडनैप की घटना के पीछे गरीबी और पेट है। या यूँ समझे इस उपन्यास में घटित होने वाले अपराध (लूटपाट, चोरी, डकैती, हत्या, किडनैपिंग, फिरौती) के पीछे का कारण भी गरीबी और पेट ही है और इसमें उत्प्रेरक जिम्मेदार तंत्र है। अपराध से जुड़े एक पात्र की लाचारी देखिए ‘हमने नहीं चुनी थी यह जिंदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए। फिर भी देखो कैसे धकेल दिए गए।’ आश्चर्य तो तब होता है जब एक बार एक डी. एम. आए थे जो अपने स्वजातीय डाकुओं को यह सलाह देकर चले गए ‘हत्या और डकैती छोड़कर अपहरण कीजिए और फिरौती वसूलिए।’ मास्टर साहब से कुमार के यह पूछने पर ज्यादातर डाकू यादव ही हैं—ऐसा क्यों?’ मास्टर की प्रतिक्रिया सारे तंत्र के तार को झकझोर कर रख देता है। अफसरशाही को कटघरे में खड़ा करती है साथ ही अपराध की दुनिया में कदम रखने की सारी परतों को भी उजागर करती है। जैसे—“अत्याचार सभी पर होता है, मगर प्रतिवाद वही करते हैं जो मिलिटेंट होते हैं। —सभी अपहरणकर्ता रेत के अंचल से आते हैं, जहाँ नारायणी नदी हर साल तबाही मचाती रहती है। दो—चार गाँवों को तो उनके पेट में जाना ही है। मकान ढहा, ज़मीन गई। क्या खाएँ, कहाँ रहें? फिर आते हैं वे आते हैं यहाँ के जमींदारों के पास। जबरन वसूली, बेगारी, बलात्कार, दमन—इसकी ट्रेनिंग यहीं मिलती है। कुछ दिनों के बाद वे सोचते हैं कि जमींदार और सेठ हमारे ही बल पर यह सब करते हैं तो हम खुद क्यों न करें। तब शुरू करते हैं स्वतंत्र डकैती। नाम कर गए, प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हो गया तो मंत्री लोगों के काम करने लगते हैं। जबरन चंदा वसूली, पार्टी फंड, बूथ कैचरिंग, लठैती! परेमा, परशुराम, बिंदा, गोकुल सब की एक ही दास्तान।”¹² इसके आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं इस कथन में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक सभी पहलुओं का कड़वा यथार्थ है। आखिर उपन्यास के अंत तक डाकू उन्मूलन के अभियान में लगे उप—पुलिस अधीक्षक कुमार अंत में यह स्वीकार कर लेता है “हम सभी अपने—अपने स्तर पर इस जंगल से लड़ने चलते हैं और एक दिन पाते हैं कि जंगल खुद हमारे अंदर उगा आ रहा है।”¹³ हम सब के अंदर एक जंगल है, अमानवीयता, अमानुषिकता का जंगल जो यहीं से शुरू होकर पूरे देश में फैल जाता है, वास्तविक जंगल को कम करता हुआ। बचा सके तो भविष्य को

ही बचा लें मानसिक प्रदूषण से। इस उपन्यास में थारू जनजाति की सभ्यता, संस्कृति और उनके संघर्ष की झलक भी मिलती है। उपन्यासकार संजीव के रचनाधर्मिता पर रणेन्द्र लिखते हैं, “हमारा समय और समाज की धड़कनें उनकी रचनाओं की पक्तियों के बीच इतनी जोर—जोर से धड़कती हुई सुनाई देती हैं कि इन्हें महसूस करने के लिए अलग से किसी आवर्धक लेंस या भूकम्पमापी उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती।”¹⁴ ये धड़कने समय समाज की हलचनों से परिचित कराने के साथ—साथ प्रकृति और पर्यावरण के और करीब ले जाती है, जल, जंगल ज़मीन के महत्व को बताते उसे बचाएँ रखने की बात करती हैं। साथ ही मनुष्य के भीतर बैठे मानसिक प्रदूषण से भी अवगत कराती हैं। वैसे इस उपन्यास में पर्यावरणीय तथ्यों का वर्णन अल्प है मानसिक प्रदूषण अधिक है। पर पर्यावरणीय संवेदना पूरे कथानक में गति देती है। उपन्यास की शुरुआत ही प्रकृति चित्रण से होती है। पर्यावरणीय तत्व उपन्यास में नारायणी नदी के तिलिस्मी कछार, दुर्भेध जंगल, पहाड़, मीलों फैले गन्नों के खेत, आम की बागें, नहर, नाले, नदियाँ, गुलमोहर के रक्ताभ फूलों से लदे वृक्षों, हरी फसलें, वनस्पतियाँ, कच्ची—पक्की सड़कें, थरुहट के मेला का विशालकाय मैदान। “बाघ की दहाड़, कठफोड़वे की ‘ठक—ठक’ पेट से हवा निकालते सियारों की जबड़े फाड़कर ‘हुआं—हुआं’ करती अपशकुनी आवाजें।”¹⁵ सब कुछ तो उपस्थित है कथानक के परिवेश में। जंगल में डाकू हैं तो इनके उन्मूलन के लिए जंगल में विशेष तौर पर नियुक्त ऑफिसर भी हैं। जंगल में पोस्टिंग पर दरोगा की प्रतिक्रिया देखिए, ‘बाघ, भालू, जंगली भैंसा, जंगली सुअर, अजगर से भरा पड़ा है।’ बीतते आषाढ़ की कोई धूपछाहीं दोपहरी है तो कहीं अगहनी धान की रोपाई चलती है तो कहीं ‘धान उगाहों’ के लिए किसिम किसिम के पक्षी मंडरा रहे हैं। कहीं दूर पहाड़ों के कपाट हिल रहे हैं। कहीं बाढ़ महाप्रलय बनकर आ रही। कहीं उफनती लहरों में नाये डगमगा रही।

यूँ तो सम्पूर्ण कथानक प्राकृतिक और पर्यावरणीय दृश्य से भरा हुआ है पर संजीव की मूल चिंता मानसिक प्रदूषण से है कि “सत्ता प्रायः ही भ्रष्ट और दबंग तत्वों की चेरी होती आई है, यह सवाल आम नागरिक को खुद से करने हैं कि वह कैसे जिंदा बच पाएंगे, कि विषाणु कितने बाहर हैं, कितने अंदर? महत्वपूर्ण पदों पर बैठे लोगों की मनमानी, छात्रों की उद्वेगता, गंदी पत्र—पत्रिकाओं के धीमे ज़हर और गुंडों के कहर की तरह ही हम फिल्मों के असर को भी बहुत हल्के से लेते हैं जबकि आज अपने देश में अपराध, लंपटता, गुंडागर्दी और दादागिरी के बीज ये चुपके—चुपके बोती रहती हैं।—ऐसी फिल्में, ऐसा साहित्य, ऐसी बातचीत जो डाकूओं या इन तत्वों को महिमामंडित करती है, की भर्त्सना करने की बजाय हम उसे बढ़ावा देते हैं—‘शोलों’ ने कितने जहरीले डकैत और गुंडे पैदा किए, यह समय ही बताएगा, मगर तब तक पानी सिर के ऊपर जा चुका होगा।”¹⁶ निःसंदेह उपन्यासकार संजीव की इन चिंताओं में मानसिक प्रदूषण के कारकों को भली—भांति समझा जा सकता है। समझा जा सकता है कि अब केवल समाज ही नहीं अपितु राजनीति भी व्यापक स्तर पर प्रदूषित हुई है। तमाम राजनीतिक चरित्र पद और धन लिप्सा में इतने डूबे हुए हैं कि इन्हें अपने—अपने स्वार्थ के सम्मुख मानवीय मूल्यों और संवैधानिक मूल्यों के क्षरण से भी विशेष सरोकार नहीं रहता, जो एक तरह का मानसिक प्रदूषण ही है।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि ‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ में उपस्थित विभिन्न चरित्रों के मानसिक संघर्ष एवं अंतर्द्वंद्व को उपन्यासकार संजीव ने विभिन्न संवादों के जरिए दिखाने—बताने का प्रयास किया है। उपन्यासकार का मूल दुःख समाज में फैलते मानसिक प्रदूषण का है कि कैसे ऑपरेशन के नाम पर गांव के गांव उजाड़े जा रहे हैं, औरतों की आबरू लूटी जा रही,

इनकाउंटर के नाम पर मर्डर किये जा रहे। संवाद के नाम पर गालियां दी जा रही! ऐसे में हमें सम्हलना होगा, अपने भीतर के अमानुषिक जंगल को खत्म कर मनुष्यता को क्षरण होने से बचाना होगा। बचाना होगा हमे खुद को, समाज को विकराल होते मानसिक प्रदूषण से क्योंकि 'धरती जितनी बाहर होती है, उतनी वह हमारे भीतर भी होती है।' और प्रदूषण-दूषित, हिंसक, गंदी, असभ्य, बर्बर और अमानवीय वृत्तियां हैं जिससे मनुष्यता शर्मशार होती है। ऐसे में मानसिक प्रदूषण से बचने-बचाने का उपक्रम मनुष्यता को बचाने का उपक्रम होगा। 'जंगल जहां शुरू होता है' इस संवेदना का सच्चा दस्तावेज़ है।

संदर्भ

1. केरकेट्टा जसिता, जड़ों की ज़मीन, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण, 2018, पृ. 156
2. कोल्हारे दत्ता (सं), हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय संवेदना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक संस्करण 2020, पृ. 9
3. वही, पृ. 10
4. बहुगुणा सुंदरलाल, धरती की पुकार राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2007, पृ. 100
5. Ventriglio A, Bellomo A, di Gioia I, Di Sabatino D, Favale D, De Berardis D, Cianconi P. Environmental pollution and mental health: a narrative review of literature. CNS Spectr. 2021 Feb;26(1):51-61. doi:10.1017/S1092852920001303. Epub 2020 Apr 14. PMID: 32284087.
6. संजीव, जंगल जहां शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, चौथा पेपरबैक संस्करण, 2019, फ्लैप से
7. निशांत (सं)सहयोग, पश्चिम बर्धमान, मई 2021, संजीव विशेषांक, पृ. 191
8. संजीव, जंगल जहां शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 9
9. वही, पृ. 27
10. वही, पृ. 92
11. वही, पृ. 90
12. वही, पृ. 105
13. वही, पृ. 286
14. निशांत (सं)सहयोग, संजीव विशेषांक, मई 2021, पृ. 139
15. संजीव, जंगल जहां शुरू होता है, पृ. 14
16. वही, पृ. 278